चेतना के विस्तार के रूप में शिक्षा

रोहित धनकर

जॉन ड्यूवी का कहना है कि 'बच्चा व्यक्तिगत संपर्कों की सिमित दुनिया में जीता है', वे मानते हैं कि बच्चे को इस ''सिमित दुनिया'' से उस दुनिया में ले जाना है, जो कि समय के हिसाब से ''अनंत अतीत तथा विस्तृत ब्रह्माण्ड में फैली हुई है।'' यह मेरे मत अनुसार शिक्षा के अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य के रूप में चरित्रार्थ होता है।

हम सब अपना जीवन सीमित व सुरक्षित वातावरण में प्रारम्भ करते है। अतः यह एक स्वाभाविक बात है कि बच्ची का जीवन उन व्यक्तियों तथा उनके साथ के प्रत्यक्ष अनुभवों व भौतिक वातावरण तक ही सिमित रहता है, जिनसे वह घिरी हुई है। परन्तु परिवार तक ही सिमटी उस छोटी सी दुनिया में भी जिस वक्त बच्ची अन्य व्यक्तियों के साथ अंतर्संबंध (वार्तालाप) स्थापित कर रही होती है उस वक्त जीवन, चेतना (मतिष्क) के विपुल विस्तार की मांग करता है। बच्ची का सामाजीकरण, उसके समुदाय विशेष के व्यवहार के तौर-तरीकों, उनकी सोच तथा भावनाओं में होता है। यह उसे अन्य लोगों से जुड़ने में तथा उनके आशय, आशाओं और दर्द को समझने में मदद करता है। इस तरह से यह कहा जा सकता है कि वह अपनी स्वयं की चेतना में उन्हें सम्मिलित कर लेती है और यह सब उसी का एक हिस्सा बन जाते हैं, तथा इस प्रकार उसकी चेतना का विस्तार होता है।

बच्चे सोचने वाले प्राणी बनें यह एक महान उपलब्धि है परन्तु बच्चों की चेतना अभी भी उनके सांस्कृतिक व भौतिक वातावरण से ही जुड़ी हुई होती है। दिमाग के सृजन की प्रक्रिया भी इसे बांधे रखती है। इसलिए बच्ची के चिंतन को ''अभी और यहां'' सोचने के उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिपेक्ष्य से स्वतंत्र करना, शिक्षा की मुख्य भूमिका है। यह एक पेचीदा प्रयास है, क्योंकि उसके मस्तिष्क को बिना उस समुदाय से पृथक किए स्वतंत्र करना है जिसमें उसके सारे विचारों का जन्म हुआ था, क्योंकि उसका मूलभूत वैचारिक उपकरण बना ही उसके उन सब अनुभवों से है जो कि उसने समुदाय में जीकर आत्मसात किए हैं।

इस अनुभव के साथ के संपर्क को समाप्त करना उसके वैचारिक उपकरण को खोखला व बेकार कर देना होगा। जबकि दूसरी तरफ अगर इस सम्पर्क की पकड़ कम न की गई तो बच्ची का वैचारिक उपकरण किसी ऐसी नई बात को, ग्रहण नहीं कर सकेगा जिसका कि समुदाय में समावेश नहीं है और हर नई बात को केवल उस समुदाय के सिमित मापदण्डों से ही निर्णित कर पाएगा।

अतः शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया बन जाती है, जिसमें बच्चे मानवता के बारे में जानने, महसूस करने, निर्णय लेने व कुछ कर सकने की क्षमता को ग्रहण कर सकें व बौद्धिक विश्लेषण कर पाने योग्य बनें। इसका तात्पर्य

यह है कि बच्ची को अपने आपको मानवता के विस्तृत समूह के एक हिस्से के रूप में देखना और अपनी कल्पना को मानव जाति के अतीत व उसके भविष्य की कल्पना तक विस्तृत करना सीखना है। ब्रह्माण्ड की विशालता मानव सभ्यता को भी एक बड़ी तथा व्यापक व्यवस्था में स्थापित करती है, यह पूरा चित्रण मानव सभ्यता को समीक्षात्मक मूल्यांकन का विषय बना देता है। यहां सवाल उठते हैं कि- मानव सभ्यता कितनी महत्वपूर्ण है? इसके तौर तरीके कितने उचित हैं? यह भविष्य में क्या दिशा लेगी, या इसे क्या दिशा लेनी चाहिए?

यह सब दिमाग की प्रक्रिया को यहां और अभी से आजाद करने के रूप में देखा जा सकता है। आजादी इस अर्थ में अपने मूल से सम्पर्क तोड़ना नहीं है, बल्कि यह सिर्फ आगे की ओर बढ़ना है।

वर्तमान में शिक्षा के जो तीन सर्वाधिक प्रचारित आदर्श हैं वे चेतना के विस्तार के घोर विरोध में खड़े हैं। हालांकि ये आदर्श उच्च शिक्षा में ज्यादा काम में लिए जाते हैं, पर वे विद्यालयी शिक्षा को भी काफी हद तक प्रभावित करते हुए उसके स्वरूप को गढ़ते हैं।

इनमें से एक आदर्श शिक्षा को पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के लिए बारूदी असला तैयार करने वाली व्यवस्था के रूप में देखता है। लोगो की आर्थिक इच्छाओं पर सवार होकर यह नजरिया केवल बेचे-खरीदे जाने वाले हुनरों पर जोर देता है। जब यह ''वैश्विक नागरिक'' जैसे जुमलो का इस्तेमाल करता है, तब भी इसका तात्पर्य सिर्फ सेवाओं का विस्तार पूरी दुनिया के बाजार में करना होता है, ना कि बाजार की शक्तियों द्वारा उत्पन्न मानव दर्द को समझने का कार्य करना। यह न केवल व्यक्ति को उसकी मूल जड़ों से अलग करता है बल्कि उसे यांत्रिक व आत्मकेन्द्रित भी बनाता है, जहां वह अपनी सोच को विस्तृत करने की बजाय सबको अपने आत्महित के चश्में से ही देख पाता/ती है।

दूसरा आदर्श समाज को समीक्षात्मक दृष्टि से देखने के आग्रह से शुरू तो होता है और शुरू में काफी उम्मीद भी जगाता है। परन्तु जल्दी ही यह नजरिया पहचान की राजनीति से इतना आसक्त हो जाता है, कि फिर यह सिर्फ अपनी खुद की पहचान पर ही केन्द्रित हो जाता है, फिर चाहे वो दलित हों या महिला, अल्पसंख्यक हों या बहुसंख्यक। यह आग्रह विश्वविद्यालय स्तर पर सबसे ज्यादा जाहिर होता है, और एक समुदाय विशेष के साथ किए गए अन्याय के प्रति इतना आसक्त हो जाता है कि संपूर्ण मानवता व मानव कृत्य को केवल उसी अन्याय के चश्मे से देखने लगता है। ऐसे में मानवता के एक हिस्से को उस समग्र चेतना में सम्मिलित करने के बजाए उसे राय बनाने के लिए काम में आने वाली सामग्री के रूप में तब्दील करते हुए जबरदस्ती उससे दूर कर दिया जाता है।

कल्पित पहचान

तीसरा आदर्श, जो कि पिछले 2-3 वर्षों से आकार ले रहा है, वह मूल सामुदायिक अनुभवों की अवहेलना करते हुए एक ही प्रकार की उस चेतना पर जोर देता है जो शुद्ध व कल्पित भारतीय संस्कृति की संकल्पना पर आधारित है। अतः यह अपने मूल समुदाय से जुड़े रहना और चेतना का विस्तार करना - दोनो ही सिद्धांतों का उल्लघंन करता है। यह प्रथम सिद्धान्त के रूप में एक भ्रम को मानता है, जिसमें 'स्व' संर्कीण रूप से परिभाषित ऐसे सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय आदर्श तक सिमित हो जाता है, जिसे जबरदस्ती भारतीय कहा जाता है।

ये तीनों विस्तृत आदर्श मस्तिष्क को अपनी खुद की परिभाषित सीमाओं तक सीमित रखते हैं। यह सभी सकारात्मक विकास का कुछ तत्व होते हुए भी अंततोगत्वा बच्ची की आत्मछवि को किसी न किसी विशिष्ट ढांचे में गढ़ना चाहते हैं। और ये ढांचे संपूर्ण मानवता के दर्द और खुशी के एहसास, उसकी सफलताओं और खतरों, उसकी नीचता की गहराई और उपलब्धियों की ऊंचाई को साथ शामिल करने में असमर्थ हैं।

हमें शिक्षा के उन आदर्शों पर पुनः जोर देने की आवश्यकता है जो मानव जाति के विशिष्ट तबकों के दर्द को महसूस तो कर सकें, पर ऐसा करते हुए बाकी की उस सभ्यता को अस्वीकार्य भी न करें जो कि मानव जीवन को बनाए रखने वाले आर्थिक तंत्र में, बिना अवरोध बने योगदान देने में सक्षम हों; जो कि हमारे सीमित अनुभवों से पोषण प्राप्त करने और इन अनुभवों को समस्त मानवता को संजोने वाले मूल्यों के तहत देखने में सक्षम हों।

अक्सर इस प्रकार के विचार को चुनौती इस सवाल के साथ दी जाती है कि यह सब तो ठीक है, पर फिर आगे का रास्ता क्या है? समस्या यह है कि ऐसा कोई तैयार नुस्खा उपलब्ध नहीं है जो इन खंडित प्रवृत्तियों का सामना कर सके। परन्तु स्पष्ट चिंतन और सम्पूर्ण मानवता के प्रति संवेदनशीलता, जिम्मेदार होना और अन्य लोगों के न्याय प्राप्ति के संघर्ष से जुड़ना, जैसी चीजें इसके किसी भी संभावित हल का एक आवश्यक हिस्सा जरूर होंगी। अगर हम ऐसा कर पाते हैं, तो आने वाले समय में इन सवालों का कोई ना कोई हल जरूर निकल पाएगा। ◆

भाषांतरण : एकलव्य नंदवाना

लेखक परिचय : अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एवं अकादमिक विकास के निदेशक हैं और दिगन्तर, जयपुर के संस्थापक सदस्य व सचिव हैं।

संपर्क : rohit.dhankar@apu.edu.in